ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

21वीं सदी के उपन्यासों में बाज़ारवाद और स्त्री

Suman Rani M. A. Hindi, Net, B. A., B. Ed. 17/18 Prem Nagar, Sirsa

ABSTRACT

वर्तमान दौर भूमंडलीकरण का है जिसमें चीजें अपनी स्थानीयता का परित्याग कर 'ग्लोबलाइज्ड' होने के लिए बेकरार हैं। भूमंडलीकरण ने मनुष्यों के सामने एक नयी तरह की चुनौती पेश की है जिससे बचकर निकल पाना बेहद मुश्किल लग रहा है। भूमंडलीकरण जिस बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति को सम्पूर्ण विश्व में स्थापित करने में लगा है, उससे भारत भी अछूता नहीं रह गया है। आज हम बाज़ार में जीने के लिये अभिशप्त हैं, चाहे-अनचाहे बाज़ार हमारे घर में घुसा चला आ रहा है। बल्कि यों कहें कि हम बाज़ार में खा रहे हैं, पी रहे हैं,बाज़ार को ओढ़ रहे हैं, बिछा रहे हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं- "बाज़ार हर जगह है-दुनिया के हर कोने में। और यह बाज़ार चौबीसों घंटे सक्रिय रहता है"।1

बाज़ार भारतीय समाज में पहले भी था लेकिन आज के बाज़ार का स्वरूप पुराने बाज़ार से काफ़ी भिन्न है। पहले बाज़ार को लोग जरूरत पर जाते थे किंतु अब लोगों का सारा वक्त बाज़ार में ही गुजरता है। यह बाज़ार की आकर्षण शक्ति है कि जिस वस्तु की हमें जरूरत नहीं उसे भी खरीद ले रहे हैं। अगर आपके पास पैसा नहीं है तो कंपनियाँ उधार या किस्तों पर सामान देने के लिए खडी हैं, बशर्ते आप लेना चाह रहे हों। इस तरह की उपभोक्तावादी प्रवृति का शिकार भारतीय जनमानस इधर बीच सबसे ज़्यादा हो रहा है। बाज़ार का चरित्र निर्माण करने में विज्ञापन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बडी-बडी मल्टीनेशनल कंपनियाँ अपने 'प्रोडक्ट' को प्रचारित एवं प्रसारित करने के लिये विज्ञापन रूपी हथियार का इस्तेमाल करती हैं। इस संदर्भ में प्रभा खेतान कहती हैं-"स्वतंत्र बाज़ार ने विज्ञापन द्वारा प्रत्येक देश की संस्कृति को प्रभावित किया है। विज्ञापनों की हवा पर सवार होकर उपभोक्तावाद दूर-दूर तक यात्रा करता है"।2 भूमंडलीय कंपनियाँ विश्वबाज़ार में अपने ब्रांड की छवि निर्मित करने में लाखों, करोडों रूपये खर्च कर देती हैं यह बात अलग है कि अपने कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक भले ही न दें।

बाज़ार ने अगर किसी को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया है तो वह है 'स्त्री'। इस नयी सदी ने जहाँ एक तरफ स्त्रियों को आर्थिक आज़ादी दी, वहीं दूसरी तरफ उसे बाज़ार के बीच लाकर खडा कर दिया है। जहाँ से वह निकलना भी चाहे तो नहीं निकल सकती। चूंकि बाज़ार स्त्री की पारंपरिक छवि को बदलकर अपने फ़ायदे के अनुसार गढ़ रहा है।आधुनिकता की आड में वह स्त्री को व्यक्ति से वस्तु के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करने में लगा है। जिससे स्त्री की पारंपरिक छवि को बहुत बडा धक्का लगा है। आज स्त्री की देह को बाज़ार भुनाने में लगा है। उसका तर्क है कि इसमें बुरा क्या है?यह दोनों के लिये फायदेमंद है। कुछ देर के लिये यह बात सत्य हो सकती है किंतु उसके बाद!। असल में इससे बाज़ार और पुरुषसत्ता को ही फ़ायदा है न की 'स्त्री' को। अपनी आर्थिक जरूरतों और महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए स्त्रियाँ अक्सर गलत कदम उठा बैठती हैं जहाँ से वापस लौट पाना बेहद मुश्किल हो जाता है।

इस नयी सदी में स्त्री की सोच में हो रहे परिवर्तनों को इस युग के साहित्यकारों ने बहुत करीब से महसूस किया है न केवल महसूस किया बल्कि उसे अपनी लेखनी का विषय भी बनया। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद किस तरह से स्त्री को प्रभावित कर रहा है, आधुनिकता और भौतिकता के लिबास में कैसे एक स्त्री उपभोग की वस्तु बनती जा रही है?। यही नहीं इस युग में स्त्री-चेतना में आये बदलाओं को केंद्र में रखकर इस बीच कई महत्वपूर्ण उपन्यास सामने आये जिनमें अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी','एक ब्रेक के बाद', अनामिका का 'तिनका-तिनके पास', कमल कुमार का 'पासवर्ड', लता शर्मा का 'सही नाप के जूते', और जयंती का उपन्यास 'ख़ानाबदोश ख्वाहिशे' आदि। इन उपन्यासों में परंपरागत स्त्री छवि में हो रहे बदलाओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।'मुक्त बाज़ार' की 'उपभोक्ता संस्कृति' में एक स्त्री किस तरह सेविकाऊ वस्तु में परिणत होती जा रही है। इसका वर्णन लगभग सभी उपन्यासों में किया गया है। आज की आधुनिक नारी पैसे के लिए अपने अंग का खुला प्रदर्शन करने में किसी तरह का संकोच नहीं करती, टीवी और विज्ञापनों में खुलेआम अपने शरीर की नुमाइस करती हुई लड़कियां देखी जा सकती हैं। इस संदर्भ में लता शर्मा कहती हैं-"मुक्त अर्थव्यवस्था के सामने नाच रही है अर्द्धनग्न स्त्री देह"।3 इन्हीं टीवी विज्ञापनों को देख कर गाँव-कस्बों की लड़कियां खुद को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए रात-दिन परेशान रहती हैं। अब स्त्रियाँ अपनी निजता पर खुल कर बोल रही हैं, अपनी शारीरिक जरूरतों और यौन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए विवाह से पहले या विवाहेत्तर संबंध बनाने से भी परहेज नहीं कर रही हैं। ख़ानाबदोश ख़्वाहिशें की नायिका निधि एक ऐसी पात्र है जो कई पुरुषों से शारीरिक संबंध बनाती है जिसका उसे कोई अफसोस नहीं है। वह बेधड़क हो कर कुबूल करती है-"मैंने जो किया, कहा और जिया, उसकी पूरी ज़िम्मेदारी उठाती हूँ। मुझमें किसी किस्म का गिल्ट नहीं।... मैं भी कुछ दिनों पहले तक मानती थी कि औरत को पुरुष दिशा देता है। मैं अपनी तलाश में बहुत भटकी। बहुत पुरुषों में सहारा ढूंढा। पर मिला तो अपने ही कंधों पर। हम हर पुरुष में एक आदर्श ढूंढते हैं। सब किताबी बातें हैं। ऐसा कुछ नहीं होता हैं"।4 यह इस युग की नई नैतिकता है जिसे आधुनिक नारी गढ रही है। 'समलैंगिकता' और 'सहजीवन' जैसी अवधारणा आज आम बात हो गयी है। मूलतः यह भारतीय समाज में पश्चिमी संस्कृति का ही प्रभाव है। बडे-बडे महानगरों में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे कि रजामंदी से शारीरिक सुख भोगतें हैं फिर अलग हो जाते हैं। स्त्री समलैंगिकता कि पक्षधरता में स्त्री खुलकर सामने आ रहीं हैं बल्कि यौन इच्छाओं की संतुष्टि के लिए पुरुष की सत्ता को खारिज कर रहीं हैं। यह आधुनिक चेतना सम्पन्न नारी का फलसफ़ा है। अभी तक स्त्री जिन मुद्दों पर बात करने से शर्म महसूस करती थी,अब उन्हीं मुद्दों पर बोल्ड होकर बात करती हुई दिखाई देती हैं। विवाह-संस्था, दांपत्य सुख, यौन तुष्टि और सहजीवन पर नई नैतिकता रचती हुई आज की स्त्री को देखा जा सकता

है।परंपरागत विवाह-संस्था कि कमजोरियाँ खुलकर सामने आने लगी हैं, जहां स्त्री को सिर्फ़ दासी समझा जाता है और पुरुष हर तरह से उसका शोषण करता है। अब इस तरह के भेद-भाव के प्रति स्त्रियाँ खुद मुखर हो रही हैं। 'एक न एक दिन' की पात्रा 'कृति' विवाह-संस्था की आलोचना करते हुये कहती है-"आखिर किसने थमाए एक व्यक्ति के हाथों में इतने अनंत अधिकार क्यों? ये व्यवस्था हमेशा औरत पर ही छीटाकशी के मौके ढूंढती रहती है? महज सात फेरे लेने से क्यूँकर एक पुरुष किसी भी स्त्री का सर्वांग मालिक बन जाएगा।

स्त्री की सारी सोच, सारी क्षमताएँ और सारी ऊर्जा क्यूँकर एक पुरुष के इर्द-गिर्द चक्कर काट कर वहीं थम जाने के लिए अभिशप्त है"।5 भूमंडलीकरण अपने साथ न केवल पूंजी लाता है बल्कि पूंजीवादी संस्कृति को भी बहा कर लाता है। जिससे वह तीसरी दुनियाँ की 'संस्कृति' को अपदस्त कर देता है और बाज़ार के जरिये अपनी संस्कृति का प्रसार करता है। 'लिविंग इन रिलेशनशिप'की संस्कृति का चलन भारतीय समाज में आम होता जा रहा है। जिसका प्रभाव भारतीय स्त्रियों पर भी पड़ा है। आज की 'स्त्री'बिना विवाह बंधन में बंधे ही किसी पर पुरुष के साथ रहने में कोई गुरेज़ नहीं करती। इस तरह की मानसिकता महानगरों की स्त्रियों में ज़्यादा नज़र आती है। जिसका जिक्र अनामिका ने अपने उपन्यास में कुछ इस तरह से किया हैं-"मुझे सहजीवन और विवाह में बुनियादी फ़र्क़ नज़र नहीं आता। फ़र्क़ है तो इतना कि विवाह के सिर पर क़ानून की छतरी और धर्म का चंदोवा टंगा है और सहजीवन बिना छतरी और चंदोवे के धूप और बारिश साथ झेलने और भोगने के रोमांस से नहाया हुआ है। विवाह एक परम ठोस सामाजिक व्यवस्था है.... सहजीवन है खुले द्वार का पिंजड़ा, जब तक मिठास से निभे, रहो, वरना तुम अपने रास्ते, हम अपने"।6बाज़ार ने जहाँ स्त्रियों को स्पेस दिया, वहीं उसके सामने कई तरह की समस्याएँ भी खड़ी कर दी है। मसलन कार्य स्थल पर अपने सहकर्मी द्वारा सेक्सवुअल हरासमेंट, बलात्कार, यौन हिंसा, वुमेन ट्रैफ़िकिंग जैसी घटनाएँ तेजी से बढ़ रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री को भोग की वस्तु बना दिया जिसकी वजह से पुरुष स्त्री को भोगने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। आफिस का बॉस हो या चाहे सहकर्मी पुरुष मित्र दोनों ही स्त्री के प्रति कुदृष्टि रखते हैं। कभी पैसे की लालच देकर तो कभी प्रमोशन का लोभ दिखाकर स्त्री की मजबूरीयों का फ़ायदा उठाने की फ़िराक़ में सदा रहते हैं। इस तरह की विकृत मानसिकता का प्रतिरोध करती हुई स्त्री हिंदी उपन्यासों में देखी जा सकती है।

'सेज पर संस्कृत' की नायिका संघमित्रा इस तरह की परिस्थितियों का भरपूर प्रतिरोध इन शब्दों में करती है-"नहीं सर, मैं इस गंदगी में लोट नहीं लगा सकती। मैं इस हवा-पानी की जीव नहीं। यदि मैं आत्मविहीन हो गई, मेरा स्वाभिमान पराजित हो गया, गर्दन मरोड़ दी गई उसकी तो कितनी दूर जा पाऊँगी मैं? जब जीवन ही हाथ से निकल जाएगा तो जीविका लेकर क्या करूंगी मैं?"7अपहरण और बलात्कार जैसी घटनाएँ आये दिन सुर्खियों में रहती हैं। लड़कियों का अपाहरण करके उन्हें कॉलगर्ल या फिर कोठे पर बेच दिया जा रहा है। जहाँ उन्हें वेश्या बनने के लिए मज़बूर किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने या अधिक धन कमाने के चक्कर में गाँव-कस्बों की लड़कियां देह-व्यापार में प्रवेश कर पूरी तरह वेश्या, कॉलगर्ल, या बार बालाएँ बन जाती हैं। बाज़ार ने जिस व्यूटी कल्चर को बढ़ावा दिया है, उससे नारी दृष्टिकोण में बड़ा भरी परिवर्तन हुआ है। बढ़ते हुये सौंदर्य-व्यापार ने स्त्री को अपने देह के प्रति सचेत किया है। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं आदि ने इस बाज़ार को बढ़ाने का काम किया है। इन सभी सवालों को लगभग सभी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में उठाया है।

अंत में कह सकते हैं कि बाज़ार ने स्त्री की पारंपरिक छवि को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बाज़ार ने स्त्रियों पर केवल निषेधात्मक प्रभाव ही नहीं डाला बल्कि सकारात्मक प्रभाव भी डाला है। इसने स्त्रियों को जहाँ आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनने का अवसर दिया तो वहीं भोगवाद और उच्छृखंलता को भी जन्म दिया। आर्थिक निर्भरता से स्त्री सशक्त जरूर हुई है पर अभी भी उसके श्रम को पुरुषों द्वारा कम महत्व दिया जाता है। स्त्रियों को बाज़ार द्वारा निर्मित नकारात्मक छवि से बचना होगा, साथ ही साथ बाज़ार द्वारा पैदा किये गये उन सवालों का हल भी ढूँढना होगा जो स्त्री छवि को धूमिल कर रहे हैं। बाज़ार द्वारा व्यक्ति से वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने के खिलाफ़ स्त्रियों को आवाज़ बुलंद करनी होगी ताकि स्त्री का मानवीय पक्ष सुरक्षित रह सके।

संदर्भ :-

1. प्रभा खेतान - भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र -पृष्ठ 16
2. प्रभा खेतान -बाज़ार के बीच: बाज़ार के खिलाफ़ -पृष्ठ 12
3. लता शर्मा - सही नाप के जूते -पृष्ठ 9
4. जयंती -ख़ानाबदोश ख्वाहिशें -पृष्ठ 190
5. रजनी गुप्त - एक न एक दिन - पृष्ठ 170
6. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा -पृष्ठ 13
7. मधु कंकरिया - सेज पर संस्कृत - पृष्ठ 159